प्रवचन-३६, श्लोक-५४, गाथा-३८, सोमवार, श्रावण कृष्ण १, दिनांक ११-०८-१९८०

नियमसार गाथा, ३८। यहाँ तक आया है। एक लाईन बाकी है। पहले क्या कहा? कि यह आत्मा जो त्रिकाली चीज़ है; धर्मी जीव को वह एक ही उपादेय है। उसका अनुभव करना, वही उसका (धर्मी का) कर्तव्य है। इसमें सात पर्याय है - अजीव का ज्ञान, जीव की पर्याय, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये सातों ही पर्यायें परद्रव्य हैं। स्वद्रव्य का इनमें अभाव है; तो संवर, और निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी परद्रव्य है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! उस पर्याय का आश्रय करने से तो विकल्प और राग उत्पन्न होता है। चाहे तो मोक्ष का मार्ग हो, उसका आश्रय करने से भी विकल्प और राग उत्पन्न होता है। उस मोक्ष के मार्ग को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। सूक्ष्म बात है, भाई!

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में—दिव्यध्वनि में आया, उसे सन्त आड़तिया होकर जगत में प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! कि संवर-निर्जरा और मोक्ष भी परद्रव्य है, क्योंकि उनके आश्रय से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! एक त्रिकाल, चार भाव से रहित, उदयभाव—पुण्य-पाप आदि; क्षयोपशमभाव, उपशमभाव और क्षायिकभाव, इन चार भावों से रहित... आहाहा! और चार भावों से अगोचर अथवा चार भावों से अगम्य अर्थात् चार भावों के आश्रय से अगम्य.... आहाहा! ऐसी चीज़ है। यह चीज़ अनादि-अनन्त प्रभु! अनादि-अनन्त है। है, उसकी आदि (शुरुआत) कैसी? और है, उसका अन्त कैसा? और है, वह अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। है, वह स्वभाववान होता है। स्वभावरहित की चीज़ कभी नहीं रहती।

वह **अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव...** शुद्ध अर्थात् कि सहज अर्थात् परमपारिणामिकभाव। आहाहा! अर्थात् ज्ञायकभाव। पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है। आत्मा के अतिरिक्त, पाँच द्रव्यों में द्रव्य जो हैं, वह पारिणामिकभाव से ही है, परन्तु यहाँ पारिणामिकभाव, वह ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, त्रिकालीभाव, शुद्धभाव...

शुद्धभाव का अधिकार है न ? तो यह पर्याय के शुद्धभाव की बात नहीं है। त्रिकाली चीज़ है जो भगवान पूर्णानन्द है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। उस शुद्धभाव को यहाँ परमपारिणामिकभाव कहा है। समझ में आया ? ऊपर है न, शुद्धभाव अधिकार ? शुद्धभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, परमपारिणामिकभाव कहो। मात्र पारिणामिक नहीं, क्योंकि मात्र पारिणामिक तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—इन चार पर्यायों को भी पारिणामिकभाव कहने में आता है, परन्तु वह परद्रव्य है। आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

धर्मी जीव को **पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! **वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वास्तव में आत्मा तो उसे ही कहते हैं। पर्याय है, वह तो व्यवहार आत्मा है और व्यवहार को अभूतार्थ कहकर, पर्याय को गौण करके, त्रिकाली परम स्वभावभाव को मुख्य करके, वही कारणपरमात्मा उपादेय है-(ऐसा कहा है)। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के सब भाव हैं, वे क्या हैं ? वह तो उदयभाव / विकार है, वह बन्ध का कारण है परन्तु जो क्षयोपशम आदि जो मोक्ष का कारण है, उसे भी परद्रव्य कहने में आया है, क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय-शुद्धि नहीं आती। इस कारण जैसे परद्रव्य में से पर्याय नहीं आती, वैसे संवर-निर्जरा और मोक्षमार्ग की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, तो वह नयी पर्याय जो आनेवाली चीज़ है, वह तो त्रिकाली परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! अरे रे! मनुष्यपने में करना हो तो यह कर्तव्य है। बाकी सब प्रपंच जाल है। आहाहा!

शुभभाव को भी संसार और प्रपंच भाव कहा है। आहाहा! यह तो ठीक, परन्तु अपनी चीज़ जो द्रव्य, गुण और पर्याय है, उन तीन का जो विचार करता है, वह भी विकल्प राग और पराधीन है। आहाहा! अन्तर एकरूप चीज़ आनन्द कारणपरमात्मा वास्तव में आत्मा यह है। वास्तव में आत्मा इसे कहा जाता है। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो बापू! कठिन है। आहाहा! उसका जानपना हो जाये, उससे भी कोई लाभ नहीं है। आहाहा! उसका आश्रय हो जाये, वह लाभ का कारण है। समझ में आया ? वास्तव में तो आत्मा वह है।

वह वास्तव में 'आत्मा' है। वह वास्तव में आत्मा निश्चय त्रिकाल स्वभाव, जिसका अनुभव करने से आनन्द आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में है तो पर्याय, परन्तु उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को परद्रव्य

कहा जाता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, वह पर्याय है। त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, प्रभु! आहाहा! **वह वास्तव में...** यथार्थ में वही आत्मा है। आहाहा! सच्चे मोक्षमार्ग की पर्याय, निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय, वह भी वास्तव में आत्मा नहीं है। वह वास्तव में आत्मा नहीं है, वह व्यवहार आत्मा है। आहाहा! यहाँ तक तो आया है। अब यहाँ कहते हैं, **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! जिसे अल्पभव रहे हैं, संसार का किनारा आ गया है और मोक्ष की पर्याय की प्राप्ति का काल अल्प रहा है। आहाहा! ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** अकेला भव्य जीव नहीं लिया। आसन्न-जिसे मोक्ष निकट है, संसार का किनारा नजदीक है। आहाहा! अकेला आसन्न भी नहीं लिया। **अति-आसन्न भव्यजीवों...** आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव जो निश्चय आत्मा है, वह **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! **ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** ऐसे भव्यजीवों को **ऐसे निजपरमात्मा...** परमात्मा कहो, कारणपरमात्मा कहो, निजपरमात्मा कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, त्रिकाली शुद्धभाव कहो—सब एक ही चीज़ है। यह अधिकार शुद्धभाव का है। आहाहा!

ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! **ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त....** पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अनन्त-अनन्त पूर्ण गुण से भरपूर प्रभु-ऐसा अपना परमात्मा, उस निजस्वरूप **के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** निमित्त तो उपादेय नहीं, राग तो उपादेय नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा आदि पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! यहाँ तो कहे, व्रत करो, प्रतिमा ले लो, यह ले लो, ऐसा करो परन्तु अभी तुझे सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा आयी कहाँ से? समझ में आया? और सम्यग्दर्शन है तो पर्याय, परन्तु उस सम्यग्दर्शन का विषय पर्याय नहीं है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन का ध्येय सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन का ध्येय परम परमात्मस्वरूप जो त्रिकाली, वह ध्येय है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसकी विधि क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में जाना, वह विधि; दूसरी क्या? जो त्रिकाली चीज़ पाताल में है... एक समय की पर्याय परद्रव्य है, उसके पाताल में निजपरमात्मा पड़ा है, उस ओर नजर करना, वह उसकी विधि है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके पास तो आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गये। आप अर्थात् यह आत्मा। वह आप अर्थात् अन्दर यह आत्मा, उसके पास जाना, वह चीज़ है। आहाहा! वैसे तो समवसरण में अनन्त बार गया, प्रभु! महाविदेह में तो... कल एक बार कहा था न? त्रिकाल में त्रिकाल जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। क्या कहा? तीन काल, तीन लोक में, तीन काल और तीन लोक को जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। सदा अनादि-अनन्त केवलज्ञानी विराजमान हैं। आहाहा! ऐसे महाविदेह में तो भगवान केवली शाश्वत् विराजते हैं और महाविदेह में जन्म लेकर अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। अनन्त पुद्गलपरावर्तन। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्त भाग में अनन्त भव होते हैं। आहाहा! बहुत बड़ी बात है, प्रभु!

एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त भव होते हैं। ऐसा एक पुद्गलपरावर्तन, ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन में जन्म लिया और जहाँ जन्म लिया तो अनन्त बार त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का समवसरण तो कायम वहाँ महाविदेह में है। उस समवसरण में गया। आहाहा! बात सुनी, परन्तु अन्दर में आत्मा का स्पर्श नहीं किया। यह सुनने के विकल्प में सुनी कि ये भगवान ऐसा कहते हैं। ऐसा ज्ञान भी ख्याल में आया, परन्तु वह आत्मा जो त्रिकाली भगवान है, उसके समीप नहीं गया। आहाहा!

कहते हैं कि **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा...** भाषा है? निजपरमात्मा। परपरमात्मा नहीं। पंच परमेष्ठी और अरिहन्त तीर्थंकर भी नहीं। आहाहा! **निजपरमात्मा...** यह आत्मा, परमात्मा ही है। 'घट घट अन्तर जिन बसे।' भगवान वीतराग मूर्ति घट-घट में विराजमान हैं। चैतन्य प्रतिमा वीतरागमूर्ति अन्तर में विराजमान है। आहाहा! चैतन्य रत्नाकर है। अनन्त चैतन्य के रत्न से भरपूर भगवान समुद्र है। जिसमें पर्याय का भी अभाव है। जो पर्याय उसका विषय करती है, उस पर्याय का भी उस चीज़ में अभाव है और उस पर्याय में भी उस द्रव्य का अभाव है। ऐसा होने पर भी वर्तमान पर्याय निजपरमात्मा की ओर झुकती है, तो पर्याय में निजपरमात्मा का ज्ञान और श्रद्धा होते हैं, परन्तु पर्याय में, निज परमात्मा है, वह आता नहीं। आहाहा! **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** अल्पकाल में जिन्हें संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहा है। प्रवचनसार के पहले अधिकार की शुरुआत में (कहा है)। जिनका संसार का किनारा निकट आ गया है, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ यह प्रवचनसार है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** निर्मलपर्याय भी निजपरमात्मा से अन्य है। राग तो अन्य है, देव-गुरु-शास्त्र तो अन्य है और देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करने से तो राग होता है, परन्तु पर्याय का आश्रय करने से भी राग होता है। समझ में आया? आहाहा! क्या करना? यह करना। जहाँ प्रभु विराजता है, वहाँ पर्याय को ले जाना। आहाहा! अभी तो पर्याय क्या, द्रव्य क्या - यह सुना नहीं होगा। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ... यहाँ तो आचार्य, भगवान कहकर बुलाते हैं। आहाहा! यह तो भगवानस्वरूप ही विराजमान है। भगवानस्वरूप है तो पर्याय में भगवान प्रगट होता है। यदि भगवानस्वरूप न हो तो पर्याय में भगवानस्वरूप कहाँ से आयेगा? प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आता है। नहीं है, उसमें से आता है? आहाहा! यह पूर्णानन्द का नाथ अस्ति तत्त्व प्रभु महा निजपरमात्मा, वही अति-आसन्न भव्यजीवों को आदरणीय स्वीकार और उसमें श्रद्धा-ज्ञान तथा आचरण करने योग्य है। उसमें... आहाहा! पर्याय में नहीं; द्रव्य में। आहाहा!

निजपरमात्मद्रव्य में... इसके **अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** कोई उपादेय नहीं है। पंच परमेष्ठी तो उपादेय नहीं, परन्तु पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, वह भी उपादेय नहीं, परन्तु मोक्ष का मार्ग उत्पन्न हुआ, वह भी उपादेय नहीं। आहाहा! है? **कुछ उपादेय नहीं है।** कुछ अंगीकार करने योग्य नहीं है। आहाहा! जहाँ तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है। जिनस्वरूपी, त्रिकाल जिनस्वरूपी प्रभु है। उसके समीप जा और उसका स्वीकार कर, वही तुझे आदरणीय है; दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। आहाहा! यह **कुछ** शब्द है न? **'न किंचिदुपादेयम'** संस्कृत में है न? पण्डितजी! संस्कृत में है। **'न किंचिदुपादेयमस्तीति'** संस्कृत में अन्तिम शब्द है। **'न किंचिदुपादेयमस्तीति'** आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव के शब्द हैं, उनकी टीका है न? **'न किंचिदुपादेयमस्तीति'** आहाहा! तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु विराजता है, वही आत्मा को, अति-आसन्न भव्य जीव को, जिसकी भव्यता पक गयी है... आहाहा! योग्यता हो गयी है, ऐसे जीव को परमात्मा निज प्रभु ही उपादेय है। आहाहा! यहाँ तो (अभी कुछ लोग) कहते हैं दया, दान, व्रत, प्रतिमा के परिणाम वे आदरणीय हैं और उन्हें करते-करते निश्चय होगा। आहाहा! प्रभु! (बात में) बहुत अन्तर है। समझ में आया?

श्लोक-५४

(अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः।।५४।।

(वीरछन्द)

सर्व तत्त्व में एक सार जो सकल क्षणिक भावों से पार।
जिसने दुर्जय काम नशा है पापवृक्ष को तीव्र कुठार॥
शुद्धबोध अवतरणरूप है सुखसागर की बाढ़ अहो।
क्लेशोदधि का यही किनारा समयसार जयवन्त रहो॥५४॥

***श्लोकार्थः*—सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है, जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है, जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है और जो क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।।५४॥**

श्लोक-५४ पर प्रवचन

आहाहा! प्रत्येक शब्द की रचना में अन्त में '**रः**' (रखा है)। बीच में और अन्त में '**रः**'

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः।।५४।।

ये पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,....** क्या कहा ? सात तत्त्व में। पदार्थरूप से नौ तत्त्व हैं। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। इन सर्व तत्त्वों में सार त्रिकाली निजपरमात्मा है। संवर-निर्जरा और मोक्ष भी सार नहीं है। आहाहा! कठिन पड़े। मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! सुनकर ज्ञान में ख्याल में आया, वह कोई चीज़ नहीं। ज्ञान में ख्याल आया कि भगवान ऐसा कहते हैं कि यह, वह भी कोई चीज़ नहीं। वह परलक्ष्यी ज्ञान है। अपना-पर्याय लक्ष्य जब त्रिकाल पर जाता है, तो वह वस्तु सार है। यहाँ पर्याय को भी सार नहीं कहा। मोक्षमार्ग भी सार नहीं। आहाहा!

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो संवर को उपादेय कहा है; निर्जरा को हितकर कहा है; मोक्ष को परमहितकर कहा है। वह उत्पन्न करने की अपेक्षा से कहा है। परन्तु उत्पन्न होता है किसके आश्रय से ? आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं और तत्त्वार्थ एकवचन है। तत्त्वार्थश्रद्धान का एकवचन है। एकवचन में वह तत्त्व एक स्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय करने से, दूसरी जो सात पर्यायें हैं, वे उसमें नहीं है - ऐसा अन्दर में ज्ञान हो जाता है। स्व-अस्ति के ज्ञान में जितनी परपर्याय है, वे उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान उसमें हो जाता है। उस ज्ञान में द्रव्य की प्रतीति हुई। आहाहा!

सर्व तत्त्वों... तत्त्व है सही। **सर्व तत्त्वों...** कहा न ? है अवश्य। वेदान्त की तरह पर्याय है ही नहीं, (ऐसा नहीं है)। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि आत्मा का अनुभव करना ? आत्मा अनुभव करे तो द्वैत हो जाता है। वह नहीं। आत्मा, बस। ऐसा वे लोग कहते हैं। ऐसा नहीं है। वह तो एकान्त मिथ्यात्व है। यहाँ सर्व तत्त्वों की अस्ति तो कही। संवर, निर्जरा, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, हैं अवश्य। हैं उनका नाश करना, है उनका लक्ष्य छोड़ना है। नहीं है, उसका लक्ष्य छोड़ना कहाँ से आया ? आहाहा!

सर्व तत्त्वों... कहने से अस्ति तो सिद्ध की। आस्रव है, संवर है, निर्जरा है, बन्ध है, मोक्ष है... आहाहा! और जीव की एक समय की पर्याय भी है और पर्याय में अजीव का ज्ञान होता है, वह भी है। पर्याय में अजीव नहीं आता। सात तत्त्व में जीव-अजीव कहा न ? तो अजीव कहीं अन्दर आ नहीं जाता, परन्तु अजीव के ज्ञान को यहाँ अजीव कहा है। समझ में आया ? आहाहा! भगवान आत्मा की एक समय की पर्याय में अजीव का ज्ञान हुआ, और उस पर्याय में संवर-निर्जरा मोक्ष भी होते हैं और उस पर्याय में आस्रव तथा बन्ध भी होता है, अतः उस पर्याय से सर्व तत्त्व हैं अवश्य, परन्तु **सर्व तत्त्वों में जो एक सार**

है,... निजपरमात्मा है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ नजर करनी है। पर्याय को अन्दर पाताल में ले जाना है। एक समय की पर्याय है, उसके पास इस ओर अन्तरात्मा स्थित है। इस ओर देखे तो राग और पुण्य दिखता है और वह पर्याय अन्दर में जाये तो परमात्मा दिखता है। आहाहा! यह कहीं बात नहीं है, बापू! आहाहा! समझ में आया?

एक समय की पर्याय वह अन्तर्मुख-अन्तर्मुख। इस ओर पर्याय की समीप में भगवान विराजता है। इस ओर पर्याय की समीप में रागादि हैं। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** वापिस भाषा ऐसी है न? तत्त्वों-बहुवचन लिया। उनकी अस्ति कही है। उनमें एक सार। आहाहा! अन्दर परमात्मा कैसा है? **जो एक सार है,...** कि जो सम्यग्दर्शन का विषय है और जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। वह सार कैसा है? आहाहा!

जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,... आहाहा! क्या कहते हैं? एक समय की पर्याय संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, तो वह नष्ट होने योग्य भाव है। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय भी नाश पाने योग्य है क्योंकि एक ही समय की पर्याय है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य...** समस्त क्यों कहा? कि आस्रव तो नष्ट होने योग्य है ही; राग का बन्ध है, वह भी नाश होने योग्य है ही; परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी एक समय की है, वह भी नाश होने योग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, भभूतमलजी! यह तुमने आठ लाख डाले (मन्दिर बनाने में दिये), इसलिए धर्म हो गया, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। मन्दिर बनाया न, मन्दिर? बैंगलोर में। आठ लाख इन्होंने दिये हैं। चार लाख जुगराजजी ने दिये हैं। बारह लाख। अभी तो पन्द्रह लाख का हो गया है। वह जड़ की पर्याय जड़ में, जड़ से हुई है परन्तु तेरे भाव में उस ओर का लक्ष्य था, वह शुभभाव भी नाशवान है। आहाहा! और शुभभाव को जानने की पर्याय जो है, वह भी नाशवान है। क्योंकि पर्याय की अवधि एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय रहता है। दूसरे समय में वैसा परन्तु वह नहीं रहता। क्या कहा? दूसरे समय में केवलज्ञान वह नहीं रहता। वैसा परन्तु दूसरा। जैसा पहले समय में है, वैसा दूसरे समय में वैसा परन्तु वह नहीं। पहले समय में जो पर्याय थी, वह दूसरे समय में नहीं है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन को अनित्य और नाशवान कहा। परन्तु यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय को नाशवान कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके जैसी है परन्तु वह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वैसी ही है। भगवान आत्मा! वह एक समय की पर्याय है परन्तु वह नाशवान है और भगवान जो है वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. शाश्वत् वर्तमान एकरूप रहता है। शाश्वत् वर्तमान एकरूप रहता है। त्रिकाल रहता है, इस अपेक्षा से वर्तमान वह वस्तु है। जैसे पर्याय वर्तमान है, वैसे यह वस्तु वर्तमान है। आहाहा! जैसे पर्याय वर्तमान है, वैसे वस्तु भी वर्तमान है, परन्तु पर्याय वर्तमान है, वह नाशवान है और यह (वस्तु) वर्तमान है, वह अविनाशी है। समझ में आया? आहाहा! दोनों को वर्तमान तो कहा। समझ में आया? ध्रुव कहा। वहाँ पाठ में ऐसा लिया है निरन्तर वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान पर्याय है, वह नहीं। वस्तु वर्तमान त्रिकाल है, वह। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाल वर्तमान पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... एक समय में वर्तमान में पूर्ण है। वह अविनाशी है और पर्यायमात्र नाशवान है। मोक्ष का मार्ग भी नाशवान है, क्योंकि एक समय की पर्याय है। व्यवहारमोक्षमार्ग तो सच्चा है ही नहीं। वह तो उपचार से कहा है, वह नाशवान है, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग स्वद्रव्य के आश्रय से निजपरमात्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न हुआ न? उत्पन्न हुआ तो व्यय भी होता है। यह (वस्तु) ध्रुव है, वह उत्पन्न भी नहीं होता और व्यय भी नहीं होता। आहाहा!

जिसे उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् कहा न? सबेरे कहा था। उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह अपना एक गुण है, तो गुण के कारण अन्दर उत्पाद, व्यय और ध्रुवपना रहता है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव गुण है। उसका गुण है, उस गुण के कारण उत्पाद होता है, पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, तथापि निश्चय में वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं गुण, उसका उत्पाद होता है, वह भी नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? अरे! क्षायिक समकित लो, वह भी एक समय की स्थिति है। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती और समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अभी नरक में भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अभी पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। वे माता के गर्भ में आयेंगे तो भी दृष्टि तो द्रव्य पर है। आहाहा!

एक बात तो ऐसी है, बहुत विचार किये हैं न? वहाँ (माता के गर्भ में) शुद्धोपयोग, ध्याता-ध्यान-ध्येय का विकल्प छूटकर शुद्धोपयोग होता है या नहीं? यह बहुत लक्ष्य में नहीं आया। वैसे तो लिखा है न? कि अनुभव कितने काल में होता है? रहस्यपूर्ण चिट्ठी

में आता है। चौथे गुणस्थान से अनुभव होता है। भले काल अल्प हो परन्तु अनुभव चौथे गुणस्थान में होता है, परन्तु यहाँ तो कहना है कि अनुभव की पर्याय जो है... आहाहा! वह भी एक समय में उत्पन्न हुई है। उत्पन्न हुई है। ध्रुव वस्तु जो त्रिकाली परमात्मा उत्पन्न हुआ नहीं। आहाहा! उसमें एक लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् और सत्द्रव्यलक्षणं, ऐसा लिया है। शक्ति में भी ऐसा लिया है। अनन्त शक्ति (में से) सैंतालीस शक्ति में एक उत्पादव्ययध्रुवयुक्त शक्ति है और सदृश-विसदृश परिणमनेवाली (शक्ति ली है)। सदृशरूप अर्थात् त्रिकाल और पर्याय विसदृश है, विसदृश है। उत्पाद-व्यय.. उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय... भाव-अभाव... भाव-अभाव... और ध्रुव सदृश है। एकरूप त्रिकाल रहनेवाला है। आहाहा! वहीं आदरणीय है और उसके अतिरिक्त सब (हेय है)। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् ऐसा गुण है और उस गुण के कारण उत्पाद पर्याय होती है। आहाहा! आत्मा उत्पाद करे तो उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। यह आत्मा का गुण जो है, उस गुण को धरनेवाले निजपरमात्मा की दृष्टि हुई तो पर्याय में उत्पन्न होता ही है। आहाहा! परन्तु जो पर्याय में उत्पन्न होता है, वह पर्याय नाशवान है। आहाहा! त्रिकाली गुण अविनाशी है। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप भगवान अविनाशी है और उसके अवलम्बन से (पर्याय) उत्पन्न हुई, ऐसा कहो। उत्पन्न हुई, ऐसा कहा न? है? आहाहा! नयी उत्पन्न होती है न? इसलिए उससे भिन्न है। सर्वनाश होने योग्य कहो (जो) उत्पन्न होनेवाले हैं, वे व्यय होने योग्य हैं, ऐसा कहते हैं। जो उत्पन्न होने योग्य है, वह व्यय होने योग्य है। आहाहा! भगवान त्रिकाली चीज़ उत्पन्न होने योग्य नहीं और नष्ट होने योग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात प्रभु की कहाँ है? अलौकिक बात है।

तथापि वह क्षायिक समकिती भगवान की प्रतिमा को वन्दन करे, भक्ति करे, पूजा करे, हों! परन्तु वह जानता है कि यह शुभभाव है। यह अनादि का व्यवहार है परन्तु इस शुभभाव को जानता है। हेयरूप से है तो भी आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव तो हेय और नाशवान है ही परन्तु शुद्धभाव के अवलम्बन से शुद्धपर्याय हुई, क्षायिक समकित, क्षायिक यथाख्यातचारित्र, क्षायिक यथाख्यातचारित्र, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक केवलदर्शन, क्षायिक वीर्य, और क्षायिक आनन्द (प्रगट हुए), वह भी पर्याय है तो नाशवान है।

वह **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...**

आया ? यह संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय है, उनसे तत्त्व दूर है। आहाहा! गजब बात, भाई! एक बात सुनने मिले नहीं और सुनने मिले तो क्या आशय कहते हैं, वह समझना कठिन पड़ता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं **नष्ट होनेयोग्य भावों से...** भाव तो कहा। चीज़ है तो अवश्य, परन्तु वह उत्पन्न हुई है तो वह नाश होनेयोग्य है। भगवान त्रिकाली उत्पन्न हुआ नहीं तो वह नष्ट नहीं होता। शास्त्र में है या नहीं ?

यह कुन्दकुन्दाचार्य का शास्त्र है और कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे (ऐसा कहते हैं)। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी....' तीसरे नम्बर में 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो...' ये कुन्दकुन्दाचार्य जो तीसरे नम्बर में हैं, वे ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। अन्तिम गाथा में है। आहाहा! और उसकी टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव ने पहले ऐसा कहा है, अरे! टीका करनेवाले हम कौन ? यह टीका तो अनादि से हुई है। शुरुआत की गाथा में है। शुरुआत में है न ? पहले शुरुआत में। आहाहा! कहाँ है ? पाँचवां (श्लोक) है न ? देखो! **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** आहाहा! ऐसी टीका हमने नहीं की, यह टीका तो अनादि से चली आ रही है। सन्तों से चली आ रही है। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित....** टीका, हों! **और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह...** चली आयी है। श्रुत के धारकों से परम्परा से यह टीका चली आती है। मैंने अकेले ने बनायी है, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! और वह किस प्रकार बनी ? कि **इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है।** विकल्प आया करते हैं कि इसकी टीका हो, इसका सार निकालें, ऐसा विकल्प आया करते हैं, इसलिए यह टीका बनी है। आहाहा! दो बातें की हैं। एक तो यह टीका गणधरों और श्रुतधरों से चली आयी है और यहाँ मैंने बनायी, उसका कारण कि मुझे मन में ऐसा विकल्प आया करता था कि यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये नियमसार बनाया, तो इसकी टीका रच जाये तो ठीक, ऐसा विकल्प आता था, इसलिए टीका बन गयी है। आहाहा! ये दो बातें।

जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,... किसने ? एक साररूप जो तत्त्व त्रिकाली

ज्ञायकभाव, उसने **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् काम की इच्छामात्र वस्तु में नहीं है, वह नाश करनेवाला है तो पर्याय में नाश करनेवाला हुआ। परन्तु इसका अर्थ यह कि उसमें काम की इच्छा का अन्तर में अभाव है। इसलिए वे सब दुर्वार काम को निवारण नहीं किया जा सकता। आहाहा! मुनि भी कहते हैं... यहाँ आया है। बाद में क्या था? आहाहा! क्या है? समाधि। भक्ति, भक्ति। उसमें ऐसा आया है, भावलिंगी मुनि ऐसे हैं... आहाहा! परन्तु अपने में कोई विकल्प उठता है, इसलिए ऐसा कहते हैं। आहाहा! कि हमें हमारे मन में किसी समय काम का विकल्प घर कर जाता है तो जो कामरहित मुनि-सन्त हैं, उन्हें मेरा नमस्कार। ऐसा है। ऐसा अन्दर है। आवश्यक है न? परम-आवश्यक में। कहीं लिखा है। है इसमें? २९५ ठीक। यह पुस्तक दूसरी है। श्लोक २५० है।

कामदेवीरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले का-भवरूपी अरण्य में शरण है। देखो! भाषा। यह पुस्तक दूसरी है। इसमें है। मैंने कहा, हाथ क्यों नहीं आया? जिसने स्वर्ण की ओर सुन्दर स्त्रियों की स्पृहा को नष्ट किया है, ऐसे हे योगी समूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी! तुम हमारे कामदेवरूपी भील के तीर से... आहाहा! घायल चित्तवाले हम हैं। अरर..! मुनि को भी कोई विकल्प आ जाये तो कहते हैं कि... आहाहा! हमारा चित्त घायल है। समझ में आया? है? यह तो दूसरी पुस्तक है। मैं पढ़ता हूँ, उसमें चिह्न किया है। है न इसमें? यह २९५ है न? वह इसमें है। इसमें है। श्लोक २५० है।

हे योगीसमूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी!... योगी अपने पूर्णानन्द में लीन हैं, तो हमारा कामदेवरूपी भील के तीर से... आहाहा! कुछ भी बाहर की सुन्दर चीज़ में विकल्प आता है तो हमारा चित्त घायल है। आहाहा! मुनि कहते हैं। है? **हमारा कामदेवीरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले को भवरूपी अरण्य में शरण तुम है।** हे मुनि! आहाहा! छद्मस्थ है। किसी समय किसी सुन्दरता के लक्ष्य से विकल्प आवे तो ऐसा लगता है कि हमारा चित्त घायल है। आहाहा! और एक ओर ऐसा कहते हैं कि केवली और मुनियों में किंचित् अन्तर है। दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि केवली और मुनि को... २५३ कलश।

सर्वज्ञ वीतराग में और इन स्ववश योगी में... २९६ पृष्ठ, २९५ के बाद तुरन्त। २९५ के बाद तुरन्त। २५३ कलश। ऊपर है। **सर्वज्ञ वीतराग में और इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है।....** आहाहा! २५३ श्लोक है। २९६ पृष्ठ पर है। आहाहा! यह तो उसे हाथ आना हो, तब आवे न? उसकी पर्याय होनी हो, तब हो न! **सर्वज्ञ वीतराग**

में और इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है।.... २५३ श्लोक। **तथापि अरे रे! हम जड़ हैं...** आहाहा! भाषा तो देखो! कितनी निर्मानता! **अरे रे!** कहाँ सर्वज्ञ और कहाँ मुनि! दोनों समान हैं। **अरे रे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद मानते हैं।** आहाहा! इतनी निर्मानता.. इतनी निर्मानता। आहाहा! मिला? ऊपर है। पहला श्लोक है। २५३, यह बात पहले आ गयी है। थोड़ा अन्दर है, ऐसा श्लोक आ गया है। वह २८८ पृष्ठ पर। २८८ है न? २८८। २४३ (कलश)। बस वह।

जो जीव अन्यवश है, वह भले मुनिवेशधारी है तो भी संसारी है... है? २४३ कलश। **नित्य दुःख को भोगनेवाला है; जो जीव स्ववश है, वह जीवन्मुक्त है। जिनेश्वर से किंचित् न्यून...** जिनेश्वर से किंचित् न्यून। २४३ कलश। यहाँ कहा कि हमारे में और उनमें कोई अन्तर नहीं। अपेक्षा से (कथन) है न? आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, तो मुक्तस्वरूप की पर्याय में जो दशा मुक्त हुई, तो हम मुक्त ही हैं। आहाहा! यह समयसार के कलश में आता है। मुक्त ही है। क्योंकि मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा निरावरण त्रिकाली। सहज निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निजपरमात्मतत्त्व मैं द्रव्य हूँ। मैं मुक्तस्वरूप हूँ। मुक्तस्वरूप का अनुभव हुआ, तो मैं तो पर्याय में भी मुक्त हो गया। आहाहा! समझ में आया?

अपने यहाँ ५४ (कलश) यहाँ आया? **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** इसका अर्थ ऐसा है... अपने चलता कलश। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** दूर है। संवर-निर्जरा से तत्त्व दूर है। केवलज्ञान की पर्याय से तत्त्व दूर है। आहाहा! दूर का अर्थ कि पर्याय में वह नहीं और वह पर्याय इसमें नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक मार्ग! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहना है कि **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** तो यह तो पर्याय हुई। पर्याय में नाश पाता है। यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें दुर्वार काम है ही नहीं। जिस काम का निवारण नहीं किया जा सकता, ऐसा नाश करनेवाला मैं हूँ। इसका अर्थ कि मुझमें वह काम है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् दुर्वार काम मेरी वस्तु में है ही नहीं। एक ओर ऐसा कहे कि संवर, निर्जरातत्त्व भी सार नहीं; सार तो यह (त्रिकाली जीव) तत्त्व है। और दूसरी ओर ऐसा कहे कि यह आत्मा काम को नाश

करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसके आश्रय से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए इसे काम का नाश करनेवाला कहने में आया है। आहाहा! है? आहाहा! **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** आहाहा! **जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** यह भी निमित्त से कथन है अर्थात् इसमें पाप है ही नहीं। पापरूप वृक्ष। पाप तो सब पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आगे लेंगे। समझ में आया? ये दो पापरूपी वृक्ष। आहाहा! **छेदनेवाला कुठार है,...** कुठार। अर्थात् उसके आश्रय से पापरूपी वृक्ष का नाश होता है। अर्थात् वह पापरूपी वृक्ष है, वह स्वरूप में ही नहीं है, ऐसा कहना है। **छेदनेवाला कुठार है,...** वह तो पर्याय हो गयी। यह तो द्रव्य की बात है। समझ में आया? आहाहा!

जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... उसमें पुण्य-पाप ही नहीं, ऐसी चीज़ मैं हूँ। आहाहा! धर्मी जीव की दृष्टि में वह आत्मा है कि जिसमें काम की वासना का त्रिकाल अभाव है और पुण्य-पाप के भाव का भी त्रिकाल अभाव है। उसे यहाँ (पापरूपी) वृक्ष को छेदनेवाला कुठार कहा है। इसके दो अर्थ हैं - एक तो उसमें पुण्य-पाप है नहीं और दूसरा उस पुण्य-पाप का नाश उसके आश्रय से होता है, इस अपेक्षा से इसे पुण्य-पाप का नाश करनेवाला कुठार कहा है। तीसरा अर्थ तो ऐसा है कि वे पुण्य और पाप इसमें है ही नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! अब लिखा है कुछ और अर्थ करना कुछ!

जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्धज्ञान का अवतार है,... यह वस्तु, हों! पर्याय प्रगट हुई, वह नहीं। **जो शुद्धज्ञान का अवतार है,...** पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण ज्ञानस्वरूप का ही अवतार है। अवतार में जन्म लेना पर्याय, वह बात यहाँ नहीं है। यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! **जो शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है...** वस्तु, सुखसागर के जल से भरपूर पूर है। आहाहा! नित्यानन्द नाथ, पर्याय के नाश से नष्ट नहीं होती, ऐसी चीज़; सर्वतत्त्वों में सार है, वह **जो सुखसागर की बाढ़ है और जो क्लेशोदधि का किनारा है,...** क्लेशरूपी समुद्र का किनारा, अर्थात् उसमें क्लेश है ही नहीं। अतः ऐसा शब्द भी कहने में आता है। क्लेशोदधि=क्लेशवरूपी सागर / समुद्र, उसका किनारा। **वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।** सदा वर्तमान, सदा जयवन्त वर्तता है। किसी समय में नहीं है, ऐसा नहीं। सदा जयवन्त वर्तता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)